मिथिला के ग्रामीण लोक संस्कृति काल में आधुनिक शिक्षा का प्रादुर्भाव

शोधार्थी छात्रा रश्मि रूपम स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर दरभंगा 846004 (बिहार)

आधुनिक शिक्षा के प्रसार की एक बड़ी बाधा मिथिला की ग्रामीण लोक संस्कृति थी। मिथिला में आधुनिकीकरण की किरण काफी देर से पहुँची। नगरीकरण, औद्योगीकरण और यातायात एवं परिवहन के साधन अत्यंत ही सीमित या फिर आधुनिकता के पैमाने पर लगभग शून्य थे। मिथिला को माटी–पानी का देश कहा जाता रहा है, जहाँ आधुनिकता की पौध (शिक्षा) का फलना–फूलना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। जाहिर है कि आधुनिक शिक्षा के लिए मिथिला समाज बिल्कुल ही अनुकूल नहीं था। अंध विश्वास, लोक आस्था, लोक सांस्कृतिक परम्पराएँ आदि आधुनिक शिक्षा के प्रसार के आगे एक दीवार की तरह खड़ी थीं।[1]

अति प्राचीन काल से ही मिथिला सम्पूर्ण भारतीय प्रायद्वीप में एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र के रूप में परिगणित होता रहा है। उत्तर वैदिक काल में जनक और याज्ञवल्क्य ने जिस ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित किया, वह ब्रह्मविद्या के रूप में युगों तक मिथिला ही नहीं पूरे भारत को आलोकित करता रहा। यह मिथिला था, जहाँ न्याय, वैशेषिक और सांख्य दर्शन का प्रवर्त्तन हुआ। याज्ञवल्क्य स्मृति से प्रारंभ धर्मशास्त्रा का चरमोत्कर्ष पूर्व मध्यकाल में हुआ। प्रारंभिक मध्यकाल में ही प्रस्फुटित नव्य न्याय पूरे मध्यकाल में भारतीय ज्ञान जगत को सुवासित करता रहा। 18वीं सदी तक मिथिला में संस्कृत शिक्षा केन्द्रों का संजाल फैला रहा। इतिहासकार उपेन्द्र ठाकुर के शब्दों में सम्पूर्ण मिथिला ने विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण कर लिया था। पारम्परिक शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में मिथिला का इतिहास जितना ही गौरवशाली रहा है, आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में मिथिला औपनिवेशिक काल में उतना ही फिसड्डी साबित हुआ। प्रस्तुत अध्याय में उपनिवेशकालीन मिथिला के शैक्षिक पिछड़ेपन की पड़ताल की गई है।

जहाँ तक प्राचीन और मध्यकाल का प्रश्न है, शिक्षा पर प्रायः ब्राह्मणों का एकाधिकार था। यह अलग बात है कि शिक्षा का फल थोड़ा–बहुत अन्य दो द्विज वर्णों को भी मिल जाता था, जिनके दान–दक्षिणा पर ही ब्राह्मण पलता था। मध्यकाल में कायस्थों ने फारसी और उर्दू शिक्षा के क्षेत्र में अपनी बढ़त बतायी, यही कारण है कि एडम को अपने सर्वेक्षण के दौरान मिथिला और बिहार में अधिकांश प्राथमिक शिक्षक कायस्थ जाति का ही मिला। जाहिर है कि

प्राचीन काल से लेकर 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक सम्पूर्ण समान अज्ञानता के अंधकार में डूबा रहा।[2] जमीन्दार एवं कुलक भूस्वामी वर्ग, ऊँची जातियों के सम्पन्न लोग, शासक मुस्लिम वर्ग और विशेष रूप से ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ आदि जातियों के अत्यंत ही सूक्ष्म अल्पसंख्यक अज्ञानान्धकार के सागर में टिमटिमाते दिए के समान थे। इनमें भी समाज की आधी आबादी तो पूरे तौर पर ईसा की दूसरी शताब्दी आते–आते (मनुस्मृति) शिक्षा प्राप्त करने के अवसर से पूरी तरह वंचित कर दी गई थीं।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जब आधुनिक शिक्षा दरवाजे पूरे उस समाज के लिए खुले, जिसके स्वयं के दरबाजे पर सदियों पुराना जंग लगा भारी–भरकम ताला लटका हुआ था। ऐसे में शुरूआती दौर में लगभग एक सदी तक समाज के पुराने फाटक के झिर्रियों से ही शिक्षा की पतली किरणें ही पहुँच सकती थी। जरूरत थी इस जंग लगे फाटक को तोड़ने की, जिसकी शुरूआ 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक सुधार आंदोलन जातीय आंदोलन, आधुनिकीकरण, सांस्कृतिकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण आदि के द्वारा हुई।[3] लेकिन अज्ञानता का अंधकार इतना घनीभूत और पुराना था कि उसे पूरी तरह भेदा नहीं जा सकता था। यही कारण है कि अध्ययन अवधि में मिथिला समाज में शिक्षा का अपेक्षित प्रसार नहीं हो सका, जो आजादी के बाद भी बना रहा।

अध्ययन अवधि में आधुनिक शिक्षा के विस्तार की दूसरी सबसे बड़ी सामाजिक समस्या धार्मिक संकीर्णता थी। कभी अलबरूनी ने कहा था कि भारतीय समाज रूढ़िग्रस्त था और किसी नई चीज को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। वाल्टेयर की भी यही धारणा थी। यह स्थिति 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक बनी रही थी। रूढ़िग्रस्तता और संकीर्णता की मजबूत जंजीरों में मिथिला का समाज बंधा हुआ था, जिसको तोड़े बिना आधुनिक शिक्षा के लिए सामाजिक आधार का निर्माण करना अत्यंत ही मुश्किल था।[4]

उपर्युक्त समस्याओं से भी बड़ी समस्या मिथिला में व्याप्त घोर निर्धनता और जमीन्दारों, भूस्वामियों और साहूकारों का वर्ग स्वार्थ था, जो यह मानते थे कि यदि रैय्यत या आसामी अथवा मजदूर वर्ग के लोग आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर लेंगे तो उनके चंगुल से निकल जायेंगे। अंग्रेजों द्वारा आधुनिक राज्य प्रणाली की स्थापना और प्रशासन एवं शिक्षा के दरबाजे सबों के लिए खोल दिए जाने को उच्च एवं मध्यम वर्ग के लोक अपने अस्तित्व के लिए भारी खतरा

मानते थे। गौरतलब है कि पानी, पाठशाला और मंदिर में प्रवेश के लिए 20वीं सदी के चौथे दशक में भीषण संघर्ष करने पड़े थे। इसी तरह जनेऊ आन्दोलन का ऊँची जातियों द्वारा प्रबल प्रतिरोध (कभी कभी हिंसक) के पीछे भी यही मानसिकता थी 'अभी जनेऊ धारण किया, फिर द्विजों की तरह शिक्षा प्राप्त करेगा'। मिथिला की ऊँची जातियों के लोग आधुनिक शिक्षा को सामाजिक स्तरीकरण में अपने ऊँचे स्तर पर बने रहने के 'विशेषाधिकार' के खात्मे का खतरा भी मानते थे। दरअसल आधुनिक शिक्षा ने मिथिला में जबर्दस्त सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व को जन्म दिया, जब जातीय एवं वर्गीय चेतना का विकास 19वीं सदी के अंत तक आते–आते हुए। खासकर पिछड़ी जातियों ने 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ऊँची जातियों के वर्चस्व को जोरदार चुनौती दी।[5]

सामाजिक प्रगति के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के बौद्धिक विकास को परिगणित किया जाता है । शैक्षणिक पिछड़ापन सामाजिक पतन का मुख्य कारण था। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा नए शैक्षणिक परिचय की प्राप्ति के साथ ही हुए सामाजिक परिवर्त्तन को इनकार नहीं किया जा सकता है। भारत में शिक्षा के विस्तार के लिए कुछ तथ्यों के पीछे ब्रिटिश दफ्तरों की चाल थी, जो कि विशुद्ध रूप से मानवीय नहीं थी – अंग्रेजों ने प्रशासन के अच्छे से संचालन तथा प्रोत्साहन के लिए निम्नपदस्थ शासकीय कर्मचारी रखा। बंगाल में राजाराम मोहन राय ने समाज के लिए अंग्रेजी शिक्षा के समर्थन का नेतृत्त्व अपने हाथों में लिया ताकि उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हो सके। इस प्रकार भारतीय लोगों के द्वारा स्वयं के लिए अंग्रेजी शिक्षा की माँग की गई।[6]

लेकिन मिथिला और बिहार में यह मामला बिल्कुल अलग था । बंगाल के जिलों की तुलना में बिहार में लोग अंग्रेजी सीखने की बहुत कम इच्छा रखते थे। बिहार में अंग्रेजी शिक्षा के प्रथम प्रयास के तथ्य को गलत ठहराया गया और प्रांतों में सरकार के द्वारा धर्मपरिवर्त्तित कर लोगों को ईसाई – धर्म बनाने की बात कही गई। यह अफवाह फैलाया गया कि जो अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे उन्हें मॉरिशस तथा अन्य ब्रिटिश कॉलिनियों में गुलाम के रूप में नौकरी दी जाएगी। यह संदिग्ध था कि बिहार में 1857 के सैन्य विद्रोह का प्रादुर्भाव में 1835 की के योजना का भी कुछ योगदान था।[7]

सरकार ने जिला स्कूल को जिला के मुख्यालयों में स्थापित किया। इस अवधि में समुदाय ने माध्यमिक विद्यालयों के उद्भव का अनुगमन किया। प्रारंभिक संधर्षों के बाद पटना कॉलेज की स्थापना सन् 1863 में की गई। प्रारंभिक काल में मिथिला के लोग, उच्च कालिजिएट शिक्षा के अधिक प्रतिकूल थे। लेकिन, प्रारंभिक वर्षों के इतिहास में पटना कॉलेज के बारे में उनकी मनोवृत्ति धीरे – धीरे बदलते हुए दिखाया गया है। इस अवधि के आँकड़े से यह पता चलता है कि बिहारी विद्यार्थियों की संख्या में धीरे – धीरे वृद्धि हुई सन् 1899 में पटना कॉलेज में 85 बंगालियों की तुलना में 150 बिहारी थे, जिसमें मिथिला के छात्र भी शामिल थे।[8]

अधिक वर्षों तक बिहार के जिला स्कूलों में और केवल पटना कॉलेज में बंगाली विद्यार्थियों की अपेक्षा बिहारी विद्यार्थियों की संख्या कम बनी रही। शैक्षणिक प्रबंधन में, विभिन्न जिला तथा सबडिविजन में प्रशासकों के द्वारा काफी परेशानियों का अनुभव किया गया। अधिकतर जिलों की स्थिति अत्यधिक पिछड़ी अवस्था में थी। यहाँ तक कि जनता के पूर्वाग्रहों के कारण प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए भी परेशानियों का सामना करना पड़ा। बेतिया के असिसटेन्ट मैनेजर ने यह रिपोर्ट किया कि जनता के साथ उनके बच्चों को भी नए विद्यालयों तथा योग्य शिक्षकों की प्राप्ति में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मिथिला के लोग नयी शिक्षा के पक्ष में नहीं थे, निष्क्रिय विरोध की एक लहर समाज में चल रही थी।[9]

पटवारी वर्ग ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की नई – प्रणाली का विरोध किया, क्योंकि वे इस बात से डरे हुए थे कि नई शिक्षा प्रणाली के विस्तार से एक विशेष व्यवसायिक शिक्षा देने के लिए अधिक सुविधाओं की आवश्यकता होगी, जिसे देने में वे समर्थ नहीं थे। शैक्षणिक विकास के लिए किसी भी प्रकार की सहायता देने में जमीन्दार वर्ग भी असफल रहे। इस जनसमूह के बीच बहुत कम ऐसे बुद्धिमान सदस्य थे जो शिक्षा के विस्तार प्रणाली के उपयोगिता को समझ सकते थे ; और इसलिए उन्होंने शिक्षा की तरक्की को किसी भी स्तर तक पहुँचाने के लिए कोई भी उल्लेखनीय सक्रिय कार्य नहीं किया।[10]

परन्तु धीरे – धीरे समाज में उच्च वर्ग के लोगों ने शिक्षा की ओर अपनी मनोवृत्ति में बदलाव किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में सरकारी जिला स्कूल पूरी तरह मिथिला और बिहारी विद्यार्थियों से भर गया। कुछ सज्जन पुरूषों ने पटना कॉलेज की समृद्धि के लिए उल्लेखनीय दिलचस्पी दिखायी। 1863 – 64 के विद्यार्थियों के बीच राजा भूप सिंह के पुत्र

और आश्रित, विलायत अली खान के पुत्र, एक धनी जमीन्दार राय हरि किशन के पुत्र, नवाब सूरत जंग के पुत्र और भतीजा, डिप्टी कलक्टर जैनुद्दीन और सूर्य कुमार मुखर्जी के पुत्र के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्मानित जनता तथा अन्य भारतीय और यूरोपीय बच्चे शामिल थे।

मिथिला में कोई भी लोकप्रिय गतिविधि नहीं थी। सामाजिक मामलों में मिथिला भँवर में ठहरे हुए पानी के सदृश था । यहाँ तक कि सामाजिक जीवन में प्रांत के पूरब तथा पश्चिम में सागर के शक्तिहीन लहरों के सदृश सुधारों का बवंडर चला जो कि असफल रहा। मिथिला में जमींदार शिक्षा के प्रति उदासीन थे । लेकिन बिहार में भागलपुर राष्ट्रीय उन्नति संध को मूल रूप से सामाजिक जीवन में परिवर्त्तन के लिए चिन्हित किया गया।[11]

भागलपुर में सोनबरसा के हरिबल्लभ नारायण की अध्यक्षता में प्रबुद्ध लोगों की बैठक बुलाई गयी, जिसमें जनता के जीवन की मुख्य आवश्यकताओं पर विचार – विमर्श किया गया। इस संध का प्रारंभ 1897 में मिथिला के उत्थान के लिए किया गया। इसने विविध उपायों तथा सक्रिय योगदान का प्रारंभ किया।[12]

रेलवे तथा अदालतों की स्थापना, इन दो महान् कारकों ने बिहार और मिथिला में शैक्षणिक तथा सामाजिक जीवन में परिवर्त्तन लाया। जनता की अभिरूचि का प्रारंभ उच्च शिक्षा के विकास में हुआ – आंशिक रूप में इसका परिणाम मुख्य अपीलों में अंग्रेजी से परिचय के रूप में हुआ तथा आंशिक रूप में संचार व्यवस्था के विस्तार के नए माध्यम के रूप में हुआ।[13]

रेलवे के विस्तार से भारत में कृषि पक्ष में आर्थिक बदलाव आया, और किसान व्यवसायिक दुनिया के संपर्क में आये। किसानों के लेन – देन में अशिक्षित लोगों का संबंद्ध होना बहुत बड़ी हानि थी। 1971 की जनगणना के अनुसार बिहार में जीवन के विभिन्न पहलुओं के आँकड़े उपलब्ध थे। 1870 – 73 में सरकारी कार्यालयों का ध्यान राज्य के निम्न शैक्षणिक स्तर की ओर आकर्षित कराया गया। पटना के कमीश्नर ने अपने रिपोर्ट में बिहार राज्य की शिक्षा में पटना डिवीजन को शैक्षणिक रूप में पिछड़े हुए स्थान के रूप में चिन्हित किया। जनता के बीच शिक्षा के लिए इच्छाशक्ति बहुत ही कम थी। इस स्थिति में सुधार के लिए यह सलाह दिया गया कि बिहारियों की शिक्षा में उत्साहवर्द्धन के लिए निश्चित संख्या में नियुक्तियाँ की जांय।[14] तिरहुत (मिथिला) के कमिशनर का भी लगभग यही मानना था।

10 जुलाई 1870 को छपरा में जनता की बैठक बुलाई गई, जिसमें भारत सरकार के परिवर्त्तित शैक्षणिक नीति के प्रस्ताव पर विचार विमर्श कर घोषणा की गई। यह एक अद्वितीय समारोह था, जिसमें छपरा संध के साधारण सदस्यों के अतिरिक्त 400 व्यक्ति उपस्थित थे। भारत सरकार के लिए स्मृतिपत्र तैयार किया गया और राज्य के सचिव को सौंपकर कहा गया कि, ''राज्य में अंग्रेजी शिक्षा से वापसी इस देश की जनता के लिए बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा।[15]

स्मार–पत्र लिखनेवालों ने इस महत्व पर जोर दिया कि देश में शिक्षा की उन्नति देशी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर निर्भर था। यह सुस्पष्ट किया गया कि अंग्रेजी शिक्षा पर हुए व्यय में देशी शिक्षा के विकास के लिए भी मदद की जाती थी। इस स्मृतिपत्र पर दो हजार लोगों के हस्ताक्षर के साथ सरकार से अंग्रेजी शिक्षा के लिए सहायता जारी रखने का आग्रह किया।

इन उपायों ने मिथिलावासियों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। 1875 से वे अंग्रेजी शिक्षा के शक पर काबू पाने लगे और उसका (अंग्रेजी शिक्षा) लाभ उठाना प्रारंभ कर दिया। अब उच्च वर्ग के लोग भी अपने – आपको लंबे समय तक विद्यालयों और महाविद्यालयों से पृथक नहीं रख सके। डी0 पी0 आई0 ने जब अपनी टिप्पणी में पटना कॉलेज के विकास की अनुशंसा की तब शिक्षा से प्राप्त होने वाले लाभों के उत्साहवर्द्धक प्रशंसा की ओर भी इशारा किया गया था। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि कुछ वर्षों में यह कॉलेज मुफस्सिल कॉलेजों के सबसे महत्वपूर्ण श्रेणी में खड़ा होगा।[16]

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में प्रांत के बड़े जमीन्दारों ने भी उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया। इस अवधि के दौरान पाँच कॉलेजों में से चार की स्थापना रईसों के उदार अनुदानों के द्वारा की गई। तेज नारायण जुबली कॉलेज की स्थापना भागलपुर के तेज नारायण सिंह के द्वारा बनैली राज के सहयोग से किया गया, जबकि बिहार नेशनल कॉलेज की स्थापना कुल्हरिया के जमीन्दार विश्वेश्वर सिंह के द्वारा किया गया। बिहार में विश्वेश्वर सिंह और उनके भाई बाबू शालिग्राम सिंह और उनके मित्र गोविन्द चरण की राजनीति में तिकड़ी थी; इनमें प्रथम और आखिरी पटना वकील संध में वकील थे और दूसरे कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकील थे।[17]

मुजफ्फरपुर में भूमिहार ब्राह्मण कॉलेज की स्थापना साहसी जमीन्दार बाबू लंगट सिंह के उदार अनुदान के द्वारा किया गया। मुँगेर कॉलेज को बढ़ावा देने के लिए जिला के कुलीन वर्ग के द्वारा सहायता प्रदान किया गया।

इन प्रयासों से वैसे शिक्षित लोगों के समूह का उद्‌भव हुआ, जो जीवन के आधुनिक मार्गों को अपनाना चाहते थे। शिक्षा के विकास से इन व्यक्तियों के समूह में नए विचारों का आगमन हुआ। इनमें से कुछ ने सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध और पूर्वाग्रहों को तोड़ा। अब मिथिला के सामाजिक जीवन में नए प्रवृत्ति का आगमन हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में समुद्र – यात्रा के विरूद्ध दृढ़ – पक्षपात अस्तित्व में (विशेषतः हिन्दुओं के बीच) आया और बीसवीं शताब्दी में भी कुछ वर्षों तक लगातार जारी रहा। लेकिन उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों के दौरान कुछ शिक्षित बिहारी इस अंधविश्वास के विरूद्ध आगे बढ़कर आए। सचिदानन्द सिन्हा प्रथम बिहारी हिन्दू थे जिन्होंने 1893 में अपने वापसी में उन्होंने समुदाय के द्वारा गंभीर विरोध का सामना किया, लेकिन फिर भी वे दृढ़ बने रहे।

अंग्रेजी शिक्षित मध्यमवर्गीय मिथिला के लोगों ने समाज में महत्वपूर्ण तथ्यों पर आवाज उठायी, जिसमें शिक्षा का प्रसार प्रमुख था । इस अभियान में बड़ी संख्या में अभिजात वर्ग अथवा कायस्थ समुदाय के धरानों के लोग आगे बढ़कर आए। अब धार्मिक विश्वास में रूढ़िवादी तथा सामाजिक प्रथाओं के विरूद्ध विद्रोह किया जाने लगा ।[18]

सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध आक्रमण प्रारंभ हुआ। शिक्षित हिन्दू तथा मुस्लिम व्यक्तियों ने धार्मिक संस्कारों के प्रति कट्टरतापूर्ण अनुराग के विरूद्ध आवाज उठाना प्रारंभ किया। जिसमें दहेज प्रथा की बुराईयाँ तथा अवांछित आडम्बर शामिल था। उनमें से कुछ ने विधवा पुनर्विवाह का समर्थन भी किया। उत्साहपूर्ण युवा पुरूषों के द्वारा कई स्थानीय संगठनों का गठन किया गया। मुजफ्फरपुर धर्म समाज सभा की पत्रिका में दहेज प्रथा तथा अन्य सामाजिक बुराईयों के विरूद्ध उठाए गए।[19]

बिहार के शिक्षित तथा साधन संपन्न व्यक्तियों ने अंग्रेजी और हिन्दू संस्था के मुख्य अंगों के नए विचारों का प्रचार प्रारंभ किया। बी0 एन0 कॉलेज के संस्थापक विशेश्वर सिंह और शालिग्राम सिंह दोनों भाईयों ने बिहार में सर्वप्रथम् अंग्रेजी के अन्तर्गत ''द इंडियन क्रॉनिकल'' का जो कि कलकत्ता के संपादक की तरह था, प्रारंभ किया। गोबिन्द चरण ने बिहार के

बहुमूल्य दस्तावेजों और हस्तलिपियों को संपादित किया ; वे अंग्रेजी में एम0 ए0 करने वाले प्रथम् बिहारी थे। उनके भाई महेश नारायण ने उनका समर्थन किया तथा उनके समर्थन से गोबिन्द चरण ने अपने नेतृत्त्व के अन्तर्गत 'द बिहार टाइम्स' का संपादन प्रारंभ किया। सचिदानन्द सिंहा, जिन्होंने अपने व्यवसाय का प्रारंभ इलाहाबाद में प्रारंभ किया, वे भी अब बाँकीपुर में बस गए। वे महेश नारायण और कृष्णा सहाय के साथ जुड़ गए, तत्पश्चात् बिहार और उड़ीसा के कार्यकारी परिषद् के सदस्य के रूप में उनका उदय हुआ। नन्दकिशोर लाल, अली इमाम और हसन इमाम पुरूषों के शिक्षित समूह के बीच महत्वपूर्ण रूप में थे, जिन्होंने बहुत वर्षों तक बिहार के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन पर शासन किया। सदी के अंत में उन्होंने अपने कार्यों का प्रारंभ किया।[20]

निष्कर्षः-

20वीं सदी में मिथिला में नवजागरण और सुधार आंदोलन का प्रभाव दिखाना प्रारंभ हुआ। 20वीं सदी के दूसरे दशक में राष्ट्रीय जागरण, जातीय आंदोलन, सुधार आंदोलन आदि जोर पकड़ने लगा और इसी के साथ शिक्षा के प्रसार की गति थोड़ी तेज हुई। किन्तु अपेक्षित तेजी नहीं आ पायी। इसका मुख्य कारण था मिथिला समाज पर ग्रामीण संस्कृति का वर्चस्व। इसको भेदने के लिए जिस नगरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की आवश्यकता थी, उन मामलों में मिथिला आजादी मिलने तक अत्यंत ही पिछड़ा क्षेत्र बना रहा। अनुकूल भौतिक परिस्थिति के अभाव में मिथिला में समाजवादी और साम्यवादी आंदोलन राजनीतिक क्षेत्र में तो प्रभावशाली था, किन्तु यह सामाजिक परिवर्त्तन या वर्ग चेतना के विकास में असफल ही सिद्ध हुआ, जिसका बुरा असर शिक्षा के विस्तार और विकास पर पड़ा। वर्ग चेतना पर जाति चेतना और राजनीति में जातिवाद कहीं अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ, जिनके कुप्रभावों को भुगतने के लिए मिथिला आजादी के बाद भी लम्बे समय तक भुगतता रहा।

संदर्भ :

1. रंजन सिंहा, **आसपेक्ट्स ऑफ सोसायटी एंड एकोनॉमी ऑफ बिहार**, पटना, 1989, पृ. 6–7

2. उपर्युक्त

3. प्रसन्न कुमार चौधरी/श्रीकांत, **बिहार में सामाजिक परिवर्त्तन के कुछ आयाम,** दिल्ली, 2010, पृ. 29

4. रंजन सिंहा, पूर्वोक्त, पृ. 8–9

5. उपर्युक्त

6. राधाकृष्ण चौधरी, **हिस्ट्री ऑफ बिहार,** पटना, 2012, पृ. 174

7. उपर्युक्त, पृ. 175

8. उपर्युक्त, पृ. 177

9. के. के. दत्त (सम्पा.), **कम्प्रेहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार**, पटना, 1978, पृ. 400

10. उपर्युक्त, पृ. 405

11. राधाकृष्ण चौधरी, **पूर्वोक्त,** पृ. 179

12. उपर्युक्त

13. उपर्युक्त

14. के. के. दत्त (सम्पा.), पूर्वोक्त, पृ. 407

15. उपर्युक्त, पृ. 408

16. उपर्युक्त

17. जे.सी. झा, **बिगनिंग ऑफ माडर्न एडुकेशन इन मिथिला**, पटना, 1972, पृ. 102

18. आर. आर. दिवाकर (सम्पा.), **बिहार थ्रू द एजेज, पटना**, 1958, पृ. 375

19. उपर्युक्त, पृ. 382

20. राधाकृष्ण चौधरी, **पूर्वोक्त,** पृ. 170

\